मध्यकालीन भावबोध से मुक्ति का स्वर

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sunderwati Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar

सार - *सामंतवादी व्यवस्था दलितों का एक तरफ शोषण कर रही थी व दूसरी ओर समाज में व्याप्त असमानता, आर्थिक शोषण और वर्गभेद को मजबूत बना रही थी। सामाजिक असमानता और भेद को धर्म के आधार पर सही ठहराया जा रहा था। मध्यकालीन समाज द्वारा स्वीकृत अपूर्ण व अधूरा ज्ञान ही वास्तविक मान लिया गया था।धर्मसत्ता के इस वर्चस्व के विरुद्ध पूरे विश्व में 13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक धार्मिक आन्दोलन शुरू हुए। अंधविश्वासों, कुरीतियों और सामाजिक विषमता से उपजे भेद के विरोध में धर्म की सीमाओं के भीतर रहकर धर्म के वास्तविक एवं मूल उपदेशों पर जोर देने वाले कवियों का उदय हुआ। योरोप में मार्टिन लूथर एवं उनके जैसे अन्य सुधारक, अरब देशों में विभिन्न सूफी संत और भारत में कबीर, गुरुनानक, रैदास और दादू जैसे कवियों व उपदेशकों ने धर्म के मानवीय प्रेममूलक रूप पर जोर दिया।*

---------------------------------X---------------------------------

उत्तर भारतीय भक्ति आन्दोलन के इन सभी संतों की दृष्टि इस अर्थ में आधुनिक नहीं थी जिस अर्थ में 20वीं शताब्दी में आधुनिकता शब्द का प्रचलन हुआ। परन्तु धर्मसत्ता के वर्चस्व के विरोध, मानवीय समता पर बल और तर्कपरकता कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनके आधार पर इन्हें आधुनिकता का बीजारोपण करने वाले विचारकों के रूप में देखा जा सकता है। भक्तकवि जनता की एकता और मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता का समर्थन करने वाले थे। इन्होंने भेद्भाव जातिप्रथा और वर्णव्यवस्था का गहरा विरोध किया। ईश्वर और मनुष्य के बीच काम करने वाले धार्मिक मध्यस्थों के साथ उन्होंने धर्मगुरुओं और धर्मस्थलों को भी गैर जरुरी करार दिया।इस प्रकार भक्ति आन्दोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि पर नजर डालने से यह स्पष्ट है कि मध्यकाल के इस छोर पर ऐसे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन प्रारंभ हो गए थे जो सामंतवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और मध्यकालीन विचारों के पराभव के लिए जिम्मेदार थे। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन अन्ततः सामन्तवादी विचारधाराओं के द्वारा नियोजित कर लिया गया लेकिन उसने सामंतवादी सामाजिकता, धर्मतंत्र और राजसत्ता से दीर्घ मुठभेड़ की। समाज की ताकतवर प्रभुसत्ता को विस्थापित कर समानता को सुनिश्चित कर सकने वाली सामाजिक, आर्थिक शक्तियों के कमजोर और असंगठित होने के कारण कोई मूलभूत परिवर्तन न आ सका। मध्यकालीन वैचारिकता से लड़ने के बावजूद भक्ति आन्दोलन सामंती तंत्र द्वारा सोख लिया गया। इसका सबसे बड़ा कारण भक्ति की धर्म से गहरी सम्बद्धता थी। भक्ति के माध्यम से तार्किकता खत्म हो गयी और भावात्मकता प्रमुख हो गयी। अतः समानता की भावना भी भक्ति काव्य की कथन प्रणाली का हिस्सा बनकर रह गयी।

यह अकारण नही है कि जिन संत कवियों के विचारों में स्वतंत्रता समानता और न्याय था, उनके ही सम्प्रदायों में मतवाद उभरा और साहित्य संकीर्ण हो गया।भारत में आधुनिक युग का आरम्भ 19वीं शताब्दी से माना जाता है। यों तो अंग्रेजों के शासन के पूर्व मुगलकाल में ही भारतीय व्यापार एवं उद्योग ने अभूतपूर्व उन्नति कर ली थी जिसने कारीगरों, शिल्पकारों के जीवन-स्तर को बेहतर बनाया और भक्ति आन्दोलन के माध्यम से उन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करनें की भी कोशिश की। परन्तु वे हमारे संपूर्णतः सामाजिक-राजनीतिक ढाचे में गुणात्मक बदलाव लाने में असफल रहे। भक्ति आन्दोलन इस दिशा में कोई कारगर भूमिका निभा पाता उससे पूर्व ही उस पर वर्णवादी उच्चवर्ग का वर्चस्व स्थापित हो गया जिसने भक्ति आन्दोलन की क्रांतिकारी सारवस्तु को लगभग समाप्त कर दिया। भक्ति आन्दोलन का रीति साहित्य में विलय इस बात का द्योतक था कि सामंती शक्तियाँ इतनी कमजोर नहीं हुई थीं कि वे समाज पर अपने वैचारिक प्रभुत्व को समाप्त होने देतीं।मुगल शासन के उत्तरकाल में जब औरंगजेब की मृत्यु के बाद केंद्रीय सत्ता काफी हद तक कमजोर हो गई तो सामंती शासकों के कई छोटे-छोटे केंद्र उभर आए। तब इन राजाओं और नवाबों ने आपस में लड़ने-झगड़ने और भोगविलास में ही अपना गौरव समझा। इसका असर उस युग के साहित्य पर भी पड़ा। 17वीं-18वीं शताब्दी में जो साहित्य लिखा गया वह या तो परम्परागत रूप से धार्मिक आध्यात्मिक साहित्य था जिसमें भक्ति आन्दोलन के दौर की विशेषताएं भी नहीं थी, या फिर वीर और श्रृंगार रस को व्यक्त करने वाली रचनाएँ थी जो

www.ignited.in

अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता के अतिरंजित गुणगान और उनके मनोरंजन या शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखी गई थी। 'अर्थकृते' के प्रयोजन से लिखित तत्कालीन कविताओं में काव्यशास्त्र के नाम पर नायिका भेद और विभिन्न नायिकाओं के सौंदर्य वर्णन, नायक-नायिकाओं के मिलन और विरह की भावनाओं के छिछले वर्णन से साहित्य भंडार भरा गया। साहित्य का सम्बन्ध केवल उच्च-वर्ग तक ही रह गया था। इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक साहित्य का जन्म हुआ। सन् 1757 के प्लासी के युद्ध में विजय के बाद अंग्रेजों ने अपने शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कई प्रशासनिक कदम उठाये। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रारंभ की। रेल लाइनें बिछाई गईं, डाक एवं तार की नई संचार प्रणाली आरम्भ हुई, प्रेस की स्थापना हुई, फलतः समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से आधुनिक विचारों और योरोप के आधुनिक साहित्य से परिचय बढ़ा। सन् 1800 में कलकत्ते में फोर्टविलियम कॉलेज की स्थापना तथा 1817 में कलकत्ते में ही हिन्दू कॉलेज की स्थापना से अंग्रेजी भाषा और साहित्य के साथ आधुनिक विज्ञान तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था आरम्भ हुई। सन् 1918 में बंगला में पत्र प्रकाशन और 1826 में 'उदन्तमार्तण्ड' नामक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यही से गद्य लेखन का प्रवर्तन हुआ, स्कूलों के पाठय-पुस्तकों के प्रकाशन के रूप में।

मध्यकाल में परंपरागत मुख्य साहित्यिक सम्पत्ति ब्रजभाषा कविता थी जो रीति एवं श्रृंगार भावना तक सीमित थी। कविगण परिपाटी बद्ध, रुढ़िग्रस्त, राधा कृष्ण की लीलाओं, नायक-नायिकाओं के कल्पित ऐश्वर्य और विलास में डूबे हुए थे। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और नए पूंजीवादी युग के लिए कविता उपर्युक्त माध्यम नहीं रह गई। अतः प्राचीन ब्रज भाषा कविता के साथ-साथ गद्य की आवश्यकता महसूस हुई। हिंदी में ब्रज भाषा गद्य, राजस्थानी गद्य और खडी बोली गद्य की स्फुट और क्षीण धाराएँ अवश्य थी किन्तु वे साहित्य का प्रधान अंग न बन पाई थी। किन्तु आधुनिक युग में आकर खड़ी बोली गद्य को परिपुष्टता प्राप्त होती गई और वह धीरे-धीरे साहित्य का प्रधान अंग बन गई। इस युग में आकर गद्य का विविधता संपन्न विकास हुआ और कविगण अपने परिपाटी बद्ध रुढ़िग्रस्त कविता छोड़कर दुनिया को नई आँखों से देखने लगे। गद्य के अंतर्गत नाटक, उपन्यास, निबंध, समालोचना जीवनी आदि साहित्य रूपों का विकास हुआ, पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों का प्रचार-प्रसार हुआ।परिणामस्वरूप कविता का कलेवर भी बदलता गया। यह परिवर्तन भक्तिकाल और रीतिकाल के पश्चात् भारतेंदुयुग में दिखाई पड़ने लगा। इस युग में प्रथम बार साहित्य के केंद्र में मनुष्य आया। साहित्यिक कलेवर में यह बदलाव भारतेंदु, द्विवेदीयुग से होता हुआ छायावाद में पूर्णरूप से स्थापित हो गया। अब साहित्य के केंद्र में देवता या राजा-रानी नहीं रहे उनका स्थान सामान्य मनुष्य ने ले लिया। ईश्वर की विभूतिशील, शक्ति व सौंदर्य को मनुष्य में देखने की प्रवृत्ति का विकास हुआ। मध्यकालीन भोगवादी सौन्दर्यबोध पहले वायवीय, कल्पनाशील रोमैण्टिक सौन्दर्यबोध में और पुनः उपयोगवादी कर्ममय सौन्दर्यबोध में परिणत होता चला गया। 'मानव तुम सबसे सुन्दरतम' की अभिव्यक्ति के साथ-साथ 'वह तोड़ती पत्थर' के सौंदर्य बोध तक के विकास का यह काल रहा।

उत्तर मध्यकालीन कविता की मूल प्रेरणा ऐहिक रही। इस काल में कवि मनुष्य का चित्रण भी ईश्वर के नाम से करते थे क्योंकि मनुष्य के विलास का सीधा चित्रण करने की हिम्मत उनमें नहीं थी। नायिका भेद, रस, छंद, अलंकर और श्रृंगार रस से भरा यह रीतिवादी साहित्य जनता से निरपेक्ष होकर विकसित हुआ। इसके विपरीत छायावाद के समस्त चिंतन का केंद्र मनुष्य है। मनुष्य की अवधारणा के रूप हिंदी साहित्य में कई बार बदले हैं और इसी के साथ परमतत्व को लेकर उसके रिश्ते भी। आदिकाल में मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्तरूप में वर्णन हुआ। रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य के रूप में चित्रण हुआ। आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केंद्र बन जाता है और ईश्वर की अवधारणा व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है।

मध्ययुगीन और छायावादी भावबोध के बीच सबसे बड़ा अंतर वैयक्तिकता का है। जहाँ मध्ययुग निर्वैयक्तिक प्रतिक्रिया करता था वही छायावाद वैयक्तिक प्रतिक्रिया को प्रमुखता देता है। नामवर सिंह अपनी पुस्तक छायावाद में मध्ययुगीन भावबोध और छायावादी कवियों के भाव-बोध में अंतर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "पुराना कवि अपने निजी प्रणय-संबंध को सीधे ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ था। रीतिकाल के कवियों के लिए भी राधा-कन्हाई की ओट अनिवार्य थी। सामंती नैतिकता का बंधन इतना कड़ा था। लेकिन इस बंधन को अस्वीकार करते हुए पंत ने उच्छवास और आँसू की बालिका के प्रति सीधे शब्दों में अपना प्रणय प्रकट किया।"[2]

छायावादी कवियों की वैयक्तिक अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति में ऊपर रही। छायावादी कवियों ने जीवन की समस्याओं का वर्णन करना प्रारंभ किया। अपनी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, दुःख-सुख, इत्यादि को साहित्य में प्रमुखता से अभिव्यक्ति प्रदान की। मध्यकालीन कवियों की निर्वैयक्तिकता के विरोध में छायावादी कवियों ने अपने वैयक्तिक जीवन को खुलकर अभिव्यक्ति प्रदानकी। सुमित्रानंदन पन्त ने कहा "बालिका मेरी मनोरम मित्र थी" और निराला ने 'सरोजस्मृति' की रचना की जिसमें अपनी

पुत्री के सौंदर्य का वर्णन किया। ऐसा साहस समूचे हिंदी साहित्य में छायावादी कवियों ने दिखाया। रीतिकालीन कवि स्त्री के शरीर, उसके अंग-प्रत्यंग का कामोद्दीपक चित्रण करते थे। उसे भोग की वस्तु मानते थे लेकिन छायावादी कवियों ने स्त्री के प्रति एक नवीन सौंदर्य-दृष्टि विकसित की। उनके लिए स्त्री का संसर्ग गंगा स्नान के समान हैं-

तुम्हारी वाणी में कल्याणि!

त्रिवेणी की लहरों का गान।"[3]

मध्यकालीन कवि शरीर को मिथ्या या पानी का बुलबुला मानते थे। लेकिन छायावादी कवियों ने ऐहिक जीवन, इहलौक और मानव शरीर के आकर्षण का महत्व प्रतिपादित किया। निष्काम कर्म की जगह प्रसाद जी ने अपनी 'कामायनी' में कर्म और भोग के सामंजस्य का गुणगान किया है। कबीर, सूर, जायसी, तुलसी आदि सभी भक्ति कालीन कवि संसार का निषेध करके परमतत्व की ओर मन ले जाने का उपकार करते हैं। लेकिन छायावाद के कवि इस संसार को पूरी तरह स्वीकार करके उसे परमतत्व से अभिन्न देखते हैं। देह का महत्व वस्तुतः लौकिकता की ओर परायण का नतीजा है जो आधुनिकता की देन है। 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग में ऐहिक जीवन में इसी आस्था और श्रद्धा का आख्यान प्रसाद जी ने किया है। श्रद्धा मनुष्य से कहती है-

तिरस्कृत कर उसको तुम भूल

बनाते हो असफल भवधाम।[4]

छायावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रमुखता से की। छायावाद की समस्त क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं मनुष्य को ध्यान में रखकर की जाने लगी। जीवन की समस्याओं का वर्णन प्रारंभ हुआ। समस्याओं के कारणों पर गौर किया जाने लगा। समस्याओं के निवारण के रास्ते सुझाये जाने लगे। शोषण से बचने हेतु भगवान को पुकारने की बजाय कविता शोषक के विरोध में खडी हुई। किसानों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध क्रांति रूपी बादल का निराला आहवान करते हैं और कहते हैं-

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,

तुझे बुलाता कृषक अधीर

हे विप्लव के वीर![5]

छायावाद मजदूरों और किसानों के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने वाली काव्यधारा है। सभी छायावादी कवियों ने शोषण का खुल कर विरोध किया। छायावादी कवियों में यह विरोध निराला के साहित्य में मुखर रूप से अभिव्यक्त हुआ।

छायावादी कवियों ने स्त्री-जीवन को निरंतर अपने सरोकारों का विषय बनाया। उसे व्यापक सामाजिक गतिविधियों के बीच उसके विचारों और भावों के साथ वास्तविक रूप से चित्रित किया। सामंती धर्मसत्ता और पितृसत्ता के दबाओं को गहराई से चित्रित किया। उसकी शक्ति और अधिकार चेतना को उभारा। समाज में स्त्री और पुरुष के बीच मौजूद स्तर-भेद का प्रतिकार किया। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' की मजदूरनी समाज के वर्ग-विभाजन को पीड़ा के साथ उकेरती है। निराला कहते हैं-

वह तोड़ती पत्थर;

देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर -

वह तोड़ती पत्थर।[6]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैयक्तिकता एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना छायावाद का केंद्रीय स्वर है। छायावादी कवियों ने स्वयं को सामाजिक रुढ़ियों और बन्धनों से मुक्त करने के लिए भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियों के निर्वैयक्तिकता के आवरण को उतार फेंका। भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियों के विपरीत उन्होंने अनुभूतियों को अपना बनाकर प्रस्तुत किया। निजी अनुभूतियाँ पूर्ण साहस के साथ अभिव्यक्त की। निजी व्यक्तित्व एवं अस्मिता को अपनाकर कवियों ने सामाजिक बन्धनों से स्वतंत्रता प्राप्त की। समाज के भय या संकोच से कवि व्यक्ति के रूप में जिन दुर्बलताओं तथा अनुभूतियों को व्यक्त करने में भय का अनुभव करते थे, छायावादी कवियों ने उन्हें साहस पूर्वक अपनी अनुभूतियाँ कह कर व्यक्त किया। छायावाद के महत्वपूर्ण कवि सुमित्रानंदन पन्त जी ने अपने काव्य-संग्रह उच्छ्वास, ग्रंथि में जयशंकर प्रसाद जी ने अपने काव्य आसूँ में, निराला ने अपने अनेक गीतों में, 'सरोज स्मृति' और 'बन बेला' में तथा महादेवी वर्मा जी ने अपनी विरह गीतों में, वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया। छायावादी कवियों की यह वैयक्तिकता उनकी अपनी अनुभूति है, भले ही यह समाज के अन्य लोगों की भी अनुभूति हो सकती है। सामंती सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में प्रेम और प्रणय संबंधों में विशेष रूप से यह वैयक्तिकता क्रांतिकारी महत्व रखती है।

मध्यकालीन कवियों ने जहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया वहीं छायावादी कवियों का प्रकृति प्रेम सूक्ष्मता, नवीनता एवं ताजगी से भरा है। प्रकृति उनके लिए एक जड़-वस्तु न होकर चेतनामय है। नामवर सिंह छायावादी कवियों

www.ignited.in

के प्रकृति-चित्रण को आधुनिक वैज्ञानिकता का स्वाभाविक परिणाम मानते हैं। अपनी पुस्तक 'छायावाद' में वे कहते हैं- "जिस युग में मनुष्य ने प्रकृति पर सबसे अधिक विजय प्राप्त की, उसी समय उसने प्रकृति पर सबसे अच्छी कवितायें लिखी। बाल्मीकि-कालिदास का प्रकृति काव्य प्रकृति पर आरंभिक विजय का परिणाम है तो छायावादी कवियों का प्रकृति चित्रण आधुनिक विजय का।"[7]

छायावादी कवि प्रकृति के भीतर मानवीय गतिविधियों का दर्शन करते हैं। इस तरह प्रकृति का मानवीकरण एक नया प्रस्थान प्रदर्शित करता है। छायावाद से पहले प्रकृति का चित्रण या तो कथा प्रसंग में किया जाता था अथवा किसी मानवीय क्रिया की पृष्ठभूमि के रूप में। लेकिन हिन्दी के भक्त कवियों अथवा रीतिवादी कवियों ने तो प्रकृति को इससे भी गौण स्थान दिया। वहाँ प्रायः प्रकृति का चित्रण या तो अप्रस्तुत-विधान के रूप में हुआ है अथवा उद्दीपन के रूप में। इसीलिए मध्ययुग के कवियों के पास प्राकृतिक वस्तुओं की सूची भी अधिक लंबी नहीं है लेकिन छायावाद ने प्रकृति को इतना महत्व दिया कि किसी अपरिचित और नन्हें से फूल को भी स्वतंत्र रूप से एक कविता का विषय बनाया। 'ओस की बूँद' पर भी एक पूरी की पूरी स्वतंत्र कविता छायावादी कवियों ने लिख डाली। अब बादल कोई सन्देश वाहक नहीं रहा। वह चेतन प्राणी की तरह छायावाद में स्थापित हुआ। प्रकृति छायावादी कवियों के लिए सहचरी, सखी, प्रेयसी माँ सब कुछ हो गयी। पन्त जी अपनी छाया कविता में छाया से आत्मीयता जताते हुए कहते हैं-

फिर तुम तम में, मै प्रियतम में

हो जावें द्रुत अंतर्धान।[8]

छायावादी कवियों का सौंदर्य-वर्णन सूक्ष्म गतिविधियों को इस तरह उकेरता है कि उसमे साँस लेती हुई छाया का स्पंदन भी दिखाई देता है। स्त्री-सौंदर्य के क्षेत्र में भी छायावादी कवियों ने स्थूल दैहिकता के स्थान पर स्वस्थ, मांसल, ऐन्द्रिय वर्णन के साथ-साथ भावनात्मक सौंदर्य की प्रतिष्ठा की है। स्त्री देह मात्र न होकर भावनाओं का पुंज बनकर छायावादी कविता में आती दिखाई देती है। छायावादी कवियों ने नारी को स्वप्निल एवं दैहिक बना दिया जो पहचान में ही नहीं आती है। निःसंदेह छायावाद ने नारी को मानवीय सहृदयता के साथ अंकित किया है। प्रसाद जी की 'कामायनी' की श्रद्धा का वर्णन इसी प्रकार की सहृदयता का परिचायक है। कामायनी में जयशंकर प्रसाद जी ने श्रद्धा का वर्णन इस प्रकार किया हैं-

नील परिधान बीच सुकुमार

खुल रहा मृदुल अधखुला अंग

खिला हो ज्यों बिजली का फूल

मेघ बन बीच गुलाबी रंग।[9]

छायावादी कवियों के प्रकृति विषयक इस नवीन सौन्दर्य का स्पष्टीकरण करते हुए नामवर सिंह कहते हैं-"छायावादी कवियों ने प्रकृति के विषय में जो इतने सूक्ष्म और नवीन सौन्दर्य-बोध का परिचय दिया, वह इसलिए नहीं कि इस बीच प्रकृति में कोई नया सौन्दर्यवर्धक दृश्य जुड़ गया था अथवा पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा छायावादियों में प्रतिभा अधिक थी। वस्तुतः यह नवीन सौन्दर्य-बोध मानव और प्रकृति के नवीन सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ है। प्रकृति ने मनुष्य में सौन्दर्य बोध जगाया और मनुष्य ने उस सौन्दर्य बोध के द्वारा प्रकृति में छिपे हुए नए-नए सौन्दर्य का उद्घाटन किया।... इस प्रकार उपेक्षित प्रकृति को छायावादी कवियों ने सम्मान दिया और उसे मध्ययुगीन बंधनों से मुक्त किया।"[10] छायावादी काव्यधारा में स्पष्ट रूप से मध्यकालीन भावबोध से मुक्ति का स्वर दिखाई पड़ता है। रीतिकालीन निर्वैयक्ति कविता की तुलना में इस वैयक्तिकता प्रधान कविता ने हिन्दी साहित्य को अपने भाव और भाषा संबंधी अनूठे प्रयोग से चौंकाप्रकृति की ही भांति छायावादी कवियों ने नारी को भी नवीन सौन्दर्यबोध के साथ चित्रित किया। नारी विषयक कविताओं की प्रधानता के कारण ही छायावाद को बहुत समय तक स्त्रैण काव्य कहा जाता रहा। छायावाद से पहले भी नारी-विषयक कविताएँ लिखी गयी लेकिन उनमें प्रधानता पुरुषों की ही थी। द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव है उसमें नारी को सम्मान के साथ चित्रित नहीं किया गया। लेकिन छायावाद में युग के प्रभाव से नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। उन्नीसवीं सदी में जो सुधार-आन्दोलन आरम्भ हुआ, वह 20वीं सदी तक अपने चरम पर पहुँच गया जिससे नारी-शिक्षा में बड़ी तेजी से प्रगति हुई। इसका असर कविता पर भी पड़ा। नारी के प्रति जो दया का भाव था वह बदल गया। अब स्त्री के प्रति सहचरी का भाव विकसित हुआ। मुक्त नारी में पुरुष को अभिनव सौंदर्य का दर्शन हुआ। इसीलिए छायावाद में सर्वाधिक प्रेम काव्य लिखे गए। रीतिवादी कवि को भौहें कमान मालूम होती थीं आँखे तीर और हँसी जहर। लेकिन छायावादी-कवि की दृष्टि में:

तुम्हारी आँखों में कर वासप्रेम ने पाया था आकार।"[11]

छायावाद में सौन्दर्य का चित्रण जितना आदर्शवादी हुआ, प्रेम की अभिव्यक्ति भी उतने ही आदर्शवादी धरातल पर हुई। इस उदात्त वृत्ति ने छायावादी कवि को ऐसी सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि दी कि उसने नारी-सौन्दर्य के चटकीले रंगों की जगह सूक्ष्म रेखाओं

और वर्णच्छायाओं को भी उवेरने में सफलता प्राप्त की। इसी उद्दात्तवृत्ति के कारण छायावादी कवियों को प्रेम की बारीक से बारीक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की शक्ति मिल गयी। साथ ही वह प्रेम का ऊँचा आदर्श भी प्रतिष्ठित कर सकें। छायावादी कवियों ने नारी के सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण किया है-

"हेर प्यारे को सेज पास नम्र मुखी हँसी-खिली

खेल रंग प्यारे संग।"[12]

छायावादी कविता में नारी को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है, वह पहले से अधिक गौरवशाली रूप में चित्रित है। श्रद्धामयी, करुणामयी, कल्याणी, कलामयी तथा प्रेममयी जीवन-सहचरी नारी का चित्रण करके छायावादी कवियों ने समाज और साहित्य को अभिनव जीवन रस से सींच दिया । उसे देवी! माँ! सहचरि! प्राण! के रूप में प्रतिष्ठित किया।

छायावादी कवियों ने मध्यकालीन कवियों की तरह काव्य-रचना की बँधी-बँधाई परिपाटी का अन्धानुकरण नहीं किया अपितु उन्होंने भाव और भाषा दोनों स्तर पर नवीन काव्य प्रतिमान स्थापित किए। मध्यकालीन काव्य भाषा ब्रजभाषा थी लेकिन छायावादी कवियों ने खड़ी बोली को काव्य-रचना का माध्यम बनाया। सुमित्रानंदन पन्त जी ने अपने पल्लव काव्य-संग्रह की भूमिका में खड़ी बोली को अपनी काव्य भाषा बनाने के संबंध में अपने विचार रखे। जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि- "ब्रजभाषा में नींद की मिठास थी, इसमें (खड़ी बोली) में जागृति का स्पंदन, उसमें रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय ज्योत्सना, इसमें दिवस का सशब्द कार्यव्यग्र प्रकाश।"[13] इस लम्बी भूमिका में पन्त जी ने मध्यकालीन कवियों के संकीर्ण भावबोध पर भी गहरा आक्षेप किया उनके संकीर्ण सौंदर्य बोध पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा कि- "इस तीन फुट के नखशिख के संसार से बाहर ये कवि पुंगव नहीं जा सके।"[14] छायावादी कवियों ने सिर्फ नवीन भाषा का ही आविष्कार नहीं किया अपितु उन्होंनें छंद की बंधी-बंधाई परिपाटी को भी तोड़ा और कविता को छंदो के बंधन से मुक्त किया। निराला अपने परिमल काव्य संग्रह की भूमिका में कविता को छंदों के बंधन से मुक्त करने का समर्थन करते हैं और कहते हैं, "मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छंदों के बंधन से छुटकारा पाना।"[15] छायावादी कवियों के इस लाक्षणिक साहस की सराहना छायावाद के आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी की है और यह स्वीकार है कि छायावादी कवियों में लाक्षणिक साहस सबसे अधिक है। छंद और भाषा संबंधी नए प्रयोग करके छायावादी कवियों ने रीतिकालीन आचार्यों को बता दिया कि हिन्दी-कविता में एक नये युग का आरम्भ हो गया।

छायावादी काव्यधारा में स्पष्ट रूप से मध्यकालीन भावबोध से मुक्ति का स्वर दिखाई पड़ता है। रीतिकालीन निर्वैयक्ति कविता की तुलना में इस वैयक्तिकता प्रधान कविता ने हिन्दी साहित्य को अपने भाव और भाषा संबंधी अनूठे प्रयोग से चौंका दिया। छायावाद की यह वैयक्तिक अभिव्यक्ति भक्तों के आत्म-निवेदन से बहुत अलग है। भक्तों ने जो आत्म-निवेदन किया, उस पर धर्म का आवरण था जो उसे तटस्थता प्रदान करता था लेकिन मध्ययुग की धार्मिकता का स्थान छायावाद में ऐहिकता ने ले लिया। फलतः छायावादी कवि की वैयक्तिक अभिव्यक्तियों के लिए इस ऐहिक युग में कोई आवरण नहीं रह गया। मध्य कालीन कवि अपने निजी प्रणय-संबंध को सीधे ढंग से व्यक्त करने असमर्थ था। रीतिकाल के कवियों के लिए भी राधा-कन्हाई की ओट अनिवार्य थी। सामंती नैतिकता का बंधन बहुत कड़ा था। लेकिन इस बंधन को अस्वीकार करने का साहस छायावादी कवियों में था। तभी सुमित्रानन्दन पन्त ने

'उच्छवास' और 'आंसू की बालिका' के प्रति सीधे शब्दों में अपना प्रणय प्रकट किया और कहा-'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'। छायावादी कवियों की एक विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी दुर्बलताओं को भी वैसे ही स्वीकार किया जैसे अपने प्रणय संबंधो को। मध्यकाल में जहाँ देवताओं के प्रेम का वर्णन होता था, वह स्थान छायावाद में साधारण मनुष्य ने ले लिया। मध्यकालीन कवियों की नारी-विषयक और प्रकृति विषयक सामंती दृष्टि को अस्वीकार करके छायावादी कवियों ने नई सौंदर्य दृष्टि विकसित की तथा अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक रुढियों पर गहरा आघात किया। छायावाद की महत्ता इस बात में है कि छायावादी कवियों ने अत्यधिक साहस और निडरता से काव्य रचना के अपने नए-प्रतिमान स्थापित किए। भाव और भाषा में आमूलचूल परिवर्तन किया तथा छायावाद को आधुनिक युग के स्वर्णकाल के रूप में स्थापित किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधुनिक साहित्य का इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0-18

2. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 19

3. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 68

www.ignited.in

4. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 26

5. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, परिमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 139

6. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, अनामिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 64

7. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 38

8. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 106

9. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 23

10. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 40-45

11. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 68

12. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, परिमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 144

13. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 16

14. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 22

15. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, परिमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0

Corresponding Author

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sunderwati Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar